॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

ऋग्वेदीय

मुद्गलोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्रथम खण्ड

पुरुषसूक्तका संक्षिप्त विषय-निरूपण

'पुरुषसूक्त' के द्वारा प्रतिपादित अर्थ-निर्णयकी व्याख्या करता हूँ—इसे भगवान् वासुदेवने इन्द्रसे कहा और आगे विवेचन किया। पुरुषसंहितामें पुरुषसूक्तका अर्थ संक्षिप्त रीतिसे इस प्रकार बताया जाता है—

पुरुषसूक्तके '**सहस्रशीर्षा०**' इस मन्त्रमें '**सहस्र**' शब्द अनन्तका वाचक है। इसी प्रकार '**दशाङ्गुलम्**' यह पद भी अनन्त योजनोंका सूचक है। इस पुरुषसूक्तका उक्त '**सहस्रशीर्षा०**' मन्त्र भगवान् विष्णुके देशगत विभुत्वका वर्णन करता है, अर्थात् यह बतलाता है कि भगवान् सम्पूर्ण देशोंमें व्याप्त हैं। दूसरा मन्त्र इन्हीं भगवान् विष्णुकी कालतः व्याप्ति बतलाता है, अर्थात् यह सूचित करता है कि भगवान् विष्णु सर्वकालव्यापी हैं—सब समय रहते हैं। तीसरा मन्त्र भगवान् विष्णुके मोक्षप्रदत्वको अर्थात् भगवान् श्रीहरि मोक्षदाता हैं—यह बतलाता है। '**एतावानस्य०**' इस तीसरे मन्त्रसे श्रीहरिके वैभवका वर्णन किया गया है॥ १—३॥

इन तीन मन्त्रोंके समुदायद्वारा ही चतुर्व्यूहात्मक भगवत्स्वरूपका वर्णन भी है। '**त्रिपाद्**' प्रभृति मन्त्रके द्वारा चतुर्व्यूहके अनिरुद्ध-स्वरूपका वैभव वर्णित है। '**तस्माद्विराळ्०**' इस मन्त्रद्वारा पादविभूतिरूप नारायणसे श्रीहरिकी स्वरूपभूता प्रकृति (माया) तथा पुरुष (जीव)-की उत्पत्ति प्रदर्शित की गयी है। '**यत्पुरुषेण**' इत्यादि मन्त्रद्वारा सृष्टिस्वरूप यज्ञ कहा गया है और '**सप्तास्यासन् परिधयः०**' मन्त्रमें उस सृष्टियज्ञके लिये समिधाका वर्णन हुआ है। यही सृष्टियज्ञ '**तं यज्ञमिति**' मन्त्रके द्वारा बताया गया है और इस मन्त्रके द्वारा मोक्षका वर्णन भी हुआ है। '**तस्मादिति**' इत्यादि सात मन्त्रोंमें जगत्की सृष्टि कही गयी है। '**वेदाहम्**' इत्यादि दो मन्त्रोंमें श्रीहरिके वैभवका वर्णन किया गया है और '**यज्ञेन०**' इस मन्त्रके द्वारा सृष्टि एवं मोक्षके वर्णनका उपसंहार किया गया है। जो इस प्रकार इस पुरुषसूक्तको जानता है, वह निश्चय ही मुक्त हो जाता है॥ ४—९॥

द्वितीय खण्ड

महापुरुषका रूप-धारण

इस प्रकार प्रथम खण्डके द्वारा मुद्गलोपनिषद्में पुरुषसूक्तका जो वैभव प्रतिपादित हुआ है, उसी भगवदीय ज्ञानका भगवान् वासुदेवने इन्द्रको उपदेश देकर, फिर सूक्ष्मतत्त्व सुननेके लिये नम्र होकर शरणमें आये हुए उन्हीं इन्द्रके लिये उस परम रहस्यस्वरूप ज्ञानका पुरुषसूक्तमय दो खण्डोंके द्वारा उपदेश किया है॥ १॥

इस पुरुषसूक्तके दो खण्ड कहे जाते हैं। पुरुषसूक्तमें जिस पुरुषका वर्णन है, वह नाम-रूप

तथा ज्ञानका अविषय होनेके कारण (अपने ब्रह्मस्वरूपसे) सांसारिक प्राणियोंके लिये दुर्ज्ञेय है। अतः संसारी जीवोंके लिये अपने इस दुर्ज्ञेयविषयत्व (स्वरूप)-को छोड़कर क्लेशादिसे युक्त देवादि (सत्त्वगुणविशिष्ट जीवों)-के उद्धारकी इच्छासे उन्होंने सहस्र (अनन्त) कलाओंवाले अवयवोंसे युक्त ऐसे कल्याणस्वरूप वेषको धारण किया, जो दर्शनमात्रसे मोक्ष देनेवाला है। उसी वेष (रूप)-से भूमि आदि लोकोंमें व्याप्त होकर वे अनन्त योजनोंतक स्थित हुए। सृष्टिके पूर्व पुरुषस्वरूप नारायण ही भूत, वर्तमान एवं भविष्य—तीनों कालोंके रूपमें अवस्थित थे। वे ही इन सब (जीवों)-को मोक्ष देनेवाले हैं। वे सम्पूर्ण महत्त्वशालियोंसे श्रेष्ठ हैं। उनसे अधिक श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है॥ २-३॥

उक्त महापुरुष (परमात्मा)-ने अपनेको चार अंशों (चतुर्व्यूहों)-में प्रकट किया। उनमेंसे तीन अंशों (त्रिपाद्विभूति अथवा वासुदेव, प्रद्युम्न और सङ्कर्षणरूप)-से वे परमव्योम (अपने परमधाम वैकुण्ठ)-में निवास करते हैं तथा इनसे भिन्न अवशिष्ट चतुर्थ अंश—चतुर्थ व्यूहरूप अनिरुद्ध नामक प्रसिद्ध नारायणके द्वारा सम्पूर्ण विश्वकी रचना (अभिव्यक्ति) हुई॥ ४॥

उस अनिरुद्धरूप चतुर्थपादात्मक नारायणने जगत्की सृष्टिके लिये प्रकृति (ब्रह्मा)-को उत्पन्न किया। वे ब्रह्माजी शरीर प्राप्त करके भी सृष्टिकर्मको न जान सके। तब उन अनिरुद्धस्वरूप नारायणने ब्रह्माजीको सृष्टिका उपदेश किया। भगवान् नारायणने कहा—'ब्रह्माजी! तुम अपनी इन्द्रियोंका यज्ञकर्ताओंके रूपमें ध्यान करो, कमलकोशसे उत्पन्न सुदृढ़ ग्रन्थिरूप (बलवान्) अपने शरीरको हवि समझो, मुझे अग्नि मानो, वसन्तकालमें घृतकी धारणा करो, ग्रीष्म-ऋतुमें समिधाका भाव करो, शरद्-ऋतुको रसरूप समझो। इस प्रकार अग्निमें हवन करनेपर तुम्हारा शरीर इतना सुदृढ़ हो जायगा कि उसके स्पर्शसे वज्र भी कुण्ठित हो जायगा। तब अपने कार्यरूप (कारणरूपमें विलीन होनेकी अवस्थासे कार्यरूपमें) सब प्राणी—पशु प्रभृति जीव प्रादुर्भूत होंगे। फिर सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् हो जायगा। इस प्रकार जीव एवं आत्माके योगद्वारा मोक्षका प्रकार भी वर्णन किया गया, यह समझना चाहिये। जो इस सृष्टि-यज्ञ तथा मोक्षप्रकारको भी जानता है, वह पूर्णायुको प्राप्त होता है'॥ ५—७॥

तृतीय खण्ड

उपासकोंद्वारा अनेक रूपमें देखे गये महापुरुषमें आत्मत्वकी भावनासे उनके स्वरूपकी प्राप्ति

एक ही देव बहुत प्रकारसे प्रविष्ट होकर स्वयं अजन्मा रहते हुए भी बहुत प्रकारसे प्रकट होता है। (तात्पर्य यह कि वही एक देव नानात्वमें व्याप्त है। वह स्वयं अजन्मा है, किंतु नानात्वकी सृष्टि भी उसीके द्वारा होती है। नानात्वके रूपमें भी वही है)॥ १॥

अध्वर्युगण उसीकी उपासना इस अग्निके रूपमें करते हैं। यजुर्वेदीय उसीको 'यह यजुः है' इस बुद्धिसे सर्वयज्ञिय कर्मोंमें योजित करते हैं। सामगान करनेवाले उसे 'साम' समझते हैं। इसी नारायणरूपमें निश्चय यह सब (दृश्य-जगत्) प्रतिष्ठित है। (तात्पर्य यह कि वही परमतत्त्व यज्ञमें अग्नि, मन्त्र तथा साम है। इससे भी आगे वह समस्त जगत्का आधार है।) सर्प उसे विष मानकर अपनाते हैं। सर्पवेत्ता (योगी) इसे सर्प—प्राणरूपसे ग्रहण करते हैं। देवता इसे अमृतरूपमें अपनाते हैं और मनुष्य इसे धन मानकर जीवन-निर्वाह करते हैं। असुर माया समझते हैं, पितर स्वधा (पितृभोजन) मानते हैं, देवजनवेत्ता (देवोपासक) देवता मानते हैं, गन्धर्व रूप समझते हैं और अप्सराएँ गन्धर्व समझती हैं। इसकी जो जिस भावसे उपासना करता है, यह परमतत्त्व उसके लिये उसी रूपका हो जाता है। इसलिये ब्रह्मज्ञानीको 'पुरुषरूप परमब्रह्म मैं ही हूँ' यह भावना करनी चाहिये। ऐसी भावनासे वह उसी स्वरूपको प्राप्त हो जाता है और जो इस रहस्यको इस प्रकार जानता है, वह भी तद्रूप हो जाता है॥ २-३॥

चतुर्थ खण्ड

ब्रह्मका स्वरूप तथा उपनिषद्के अध्ययनका माहात्म्य; सूक्तके अनधिकारी तथा उसके उपदेशकी विधि

वह ब्रह्म तीनों तापोंसे रहित, छः कोशोंसे शून्य, षड्ऊर्मियोंसे वर्जित, पञ्चकोशोंसे अतीत, षड्भावविकारोंसे रहित—इस प्रकार सबसे विलक्षण है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—ये 'तीन ताप' हैं जो कर्ता-कर्म-कार्य, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय और भोक्ता-भोग-भोग्य—इस प्रकार एक-एक त्रिविध हैं। चर्म, मांस, रक्त, अस्थि, नसें और मज्जा—ये 'छः कोश (धातु)' हैं। काम, क्रोध, लोभ मोह, मद और मात्सर्य—ये 'छः शत्रुवर्ग' हैं। 'पञ्च कोश' हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। प्रिय होना, उत्पन्न होना, बढ़ना, बदलना, घटना और नाश होना—ये 'छः भावविकार' हैं। भूख, प्यास, शोक, मोह, वृद्धावस्था और मृत्यु—ये 'छः ऊर्मियाँ' हैं। कुल, गोत्र, जाति, वर्ण, आश्रम और रूप—ये 'छः भ्रम' होते हैं। इन सबके योगसे परम पुरुष ही जीव होता है, दूसरा नहीं॥ १—९॥

जो इस उपनिषद्का नित्य अध्ययन करता है, वह अग्निपूत होता है। वह वायुपूत होता है। वह आदित्यपूत होता है। वह रोगहीन हो जाता है। श्रीसम्पन्न हो जाता है। पुत्र-पौत्रादिकी समृद्धिसे युक्त हो जाता है। विद्वान् हो जाता है। महापापोंसे पवित्र हो जाता है। × × × काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्यादिसे बाधित नहीं होता। सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसी जन्ममें वह पुरुष (परमात्मरूप) हो जाता है॥ १०॥

इसलिये इस पुरुषसूक्तका अर्थ अत्यन्त रहस्ययुक्त है। यह राजगुह्य, देवगुह्य एवं गोपनीयोंसे भी अधिक गोपनीय है। जो दीक्षित न हो, उसे इसका उपदेश न करे; जो विद्वान् होनेपर भी जिज्ञासुभावसे प्रश्न न करता हो, उसे भी इसका उपदेश न करे। जो यज्ञ न करता हो, उसे भी उपदेश न करे; अवैष्णवको न करे, अयोगीको न करे; बहुभाषीको न करे, अप्रियभाषीको न करे; जो वर्षभरमें एक बार वेदोंका स्वाध्याय न कर ले, उसे भी न करे; असंतोषीको न करे और जिसने वेदोंका अध्ययन न किया हो, उसे भी इसका उपदेश न करे।

इसको इस प्रकार जाननेवाला विद्वान् गुरु भी पवित्र देशमें, पुण्य नक्षत्रमें, प्राणायाम करके, परमपुरुषका ध्यान करता हुआ, विनीतभावसे शरणमें आये हुए शिष्यको ही उसके दाहिने कानमें इस पुरुषसूक्तके अर्थका उपदेश करे। बहुत न बोले। नहीं तो, वह उपदेश यातयामत्वरूप दोषसे दूषित हो जाता है (उसका सार चला जाता है, अतः वह उपदेश सफल नहीं हो पाता)। बार-बार कानमें उपदेश दे। ऐसा करनेवाला अध्येता (शिष्य) और अध्यापक (गुरु) दोनों इसी जन्ममें पुरुष—ब्रह्मरूप हो जाते हैं॥ ११॥

॥ ऋग्वेदीय मुद्गलोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

नारायणपरो ज्योतिरात्मा नारायणः परः।
नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः।
नारायणपरो ध्याता ध्यानं नारायणः परः॥ (नारायणोप०)

नारायण परमज्योति हैं, नारायण परमात्मा हैं, नारायण परमब्रह्म हैं, नारायण परमतत्त्व हैं, नारायण परम ध्याता हैं और नारायण ही परम ध्यान हैं।

(मुद्गलोपनिषद्में वर्णित पुरुषसूक्त)

अथ पुरुषसूक्तप्रारम्भः

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ १॥*

उन परमपुरुषके सहस्रों (अनन्त) मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं। वे इस सम्पूर्ण विश्वकी समस्त भूमि (पूरे स्थान)-को सब ओरसे व्याप्त करके इससे दस अङ्गुल (अनन्त योजन) ऊपर स्थित हैं। अर्थात् वे ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए उससे परे भी हैं। [यह मन्त्र भगवान् विष्णुके देशगत विभुत्वका प्रतिपादक है।] ॥ १ ॥

ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ २॥

यह जो इस समय वर्तमान (जगत्) है, जो बीत गया और जो आगे होनेवाला है, यह सब वे परमपुरुष ही हैं। इसके अतिरिक्त वे अमृतत्व (मोक्षपद)-के तथा जो अन्नसे (भोजनद्वारा) जीवित रहते हैं, उन सबके भी ईश्वर (अधीश्वर—शासक) हैं। [यह मन्त्र भगवान्के सर्वकालव्यापी रूपका वर्णन करता है।] ॥ २ ॥

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ ३॥

यह भूत, भविष्य, वर्तमानसे सम्बद्ध समस्त जगत् इन परम पुरुषका वैभव है। वे अपने इस विभूति-विस्तारसे महान् हैं। उन परमेश्वरकी एकपाद विभूति (चतुर्थांश)-में ही यह पञ्चभूतात्मक विश्व है। उनकी शेष त्रिपाद्विभूतिमें शाश्वत दिव्यलोक (वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, शिवलोक आदि) हैं। [यह मन्त्र भगवान्के वैभवका वर्णन करता है और नित्य लोकोंके वर्णनद्वारा उनके मोक्षपदत्वको भी बतलाता है।] ॥ ३ ॥

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥ ४॥

वे परमपुरुष स्वरूपतः इस मायिक जगत्से परे त्रिपाद्विभूतिमें प्रकाशमान हैं। (वहाँ मायाका प्रवेश न होनेसे उनका स्वरूप नित्य प्रकाशमान है।) इस विश्वके रूपमें उनका एक पाद ही प्रकट हुआ है। अर्थात् एक पादसे वे ही विश्वरूप भी हैं। इसलिये वे ही सम्पूर्ण जड एवं चेतनमय उभयात्मक जगत्को परिव्याप्त किये हुए हैं। [इस मन्त्रमें भगवान्के चतुर्व्यूहरूपमेंसे चतुर्थ अनिरुद्धरूपका वर्णन हुआ है। यही रूप एकपाद ब्रह्माण्डवैभवका अधिष्ठान है।] ॥ ४ ॥

ॐ तस्माद् विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥ ५॥

उन्हीं आदिपुरुषसे विराट् (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ। वे परमपुरुष ही विराट्के अधिपुरुष—अधिदेवता (हिरण्यगर्भ) हुए। वह (हिरण्यगर्भ) उत्पन्न होकर अत्यन्त प्रकाशित हुआ। पीछे उसीने भूमि (लोकादि) तथा शरीर (देव, मानव, तिर्यक् आदि) उत्पन्न किये। [इस मन्त्रमें श्रीनारायणसे माया एवं जीवोंकी उत्पत्तिका वर्णन है।] ॥ ५ ॥

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ ६॥

देवताओंने उस पुरुषके शरीरमें ही हविष्यकी भावना करके यज्ञ सम्पन्न किया। इस यज्ञमें वसन्त-

---

* उपनिषद्के अनुसार पुरुषसूक्तके प्रारम्भिक चार मन्त्रोंमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इन चतुर्व्यूहात्मक भगवत्स्वरूपोंका वर्णन भी होता है। प्रथम मन्त्रमें भगवान्के वासुदेवस्वरूपका वर्णन है। मन्त्रके अनुसार वे अनन्त हैं, सबको व्याप्त करके भी सबसे परे हैं। उन्हींका दिव्य प्रकाश समस्त अन्तःकरणोंमें है और फिर भी वे अन्तःकरणोंके धर्मोंसे निर्लिप्त, सबसे परे हैं। यही उनका चेतनात्मक वासुदेवरूप है।

दूसरे मन्त्रमें उनके संकर्षणस्वरूपका वर्णन है। संकर्षणस्वरूप दिव्य प्राणात्मक है। समस्त जगत् त्रिकालमें इसी रूपसे व्यक्त होता है और भगवान्का यही रूप उसका शासक एवं स्वामी है। यही भगवान्का ईश्वरस्वरूप है।

तीसरे मन्त्रमें भगवान्के प्रद्युम्नस्वरूपका वैभव है। भगवान्का यह स्वरूप सौन्दर्य-घन, दिव्य कामात्मक एवं ध्यानगम्य है। त्रिपाद्विभूतिमें नित्यलोकोंमें भगवान् इसी स्वरूपसे विराजमान हैं। श्रुतिके इस तात्पर्यको उपनिषद्ने स्पष्ट किया है।

चतुर्थ मन्त्रमें भगवान्का अनिरुद्ध—दुर्निवार स्वरूप है। भगवान्का यह स्वरूप योगमायासमन्वित है। वही जगद्रूप एवं जगत्का कारण है। यही रूप भगवान्की चतुर्थ पादविभूतिका है।

ऋतु घृत, ग्रीष्म-ऋतु इन्धन और शरद्-ऋतु हविष्य (चरु-पुरोडाशादि विशेष हविष्य) हुए। अर्थात् देवताओंने इनमें यह भावना की। [इस मन्त्रमें सृष्टिरूप यज्ञका वर्णन है और आगे आठ मन्त्रोंतक वही है।] ॥ ६ ॥

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ ७॥*

सबसे प्रथम उत्पन्न उस पुरुषको ही यज्ञमें देवताओं, साध्यों और ऋषियोंने (पशु मानकर) कुशके द्वारा प्रोक्षण करके (मानसिक) यज्ञ सम्पूर्ण किया। [इस मन्त्रमें सृष्टि-यज्ञके साथ मोक्षका वर्णन भी किया गया है।] ॥ ७ ॥

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥ ८॥

उस ऐसे यज्ञसे जिसमें सब कुछ हवन कर दिया गया था, प्रशस्त घृतादि (दूध, दधि प्रभृति) उत्पन्न हुए। इस उस यज्ञरूप पुरुषने ही वायुमें रहनेवाले, ग्राममें रहनेवाले, वनमें रहनेवाले तथा दूसरे पशुओंको उत्पन्न किया। (तात्पर्य यह कि उस यज्ञसे नभ, भूमि एवं जलमें रहनेवाले समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई और उन प्राणियोंसे देवताओंके योग्य हवनीय प्राप्त हुआ।) ॥ ८ ॥

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥ ९॥

जिसमें सब कुछ हवन किया गया था, उस यज्ञपुरुषसे ऋग्वेद और सामवेद प्रकट हुए। उसीसे गायत्री आदि छन्द प्रकट हुए। उसीसे यजुर्वेदकी भी उत्पत्ति हुई ॥ ९ ॥

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥ १०॥

उस यज्ञपुरुषसे घोड़े उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त नीचे-ऊपर दोनों ओर दाँतोंवाले (गर्दभादि) भी उत्पन्न हुए। उसीसे गौएँ उत्पन्न हुईं और उसीसे बकरियाँ और भेड़ें भी उत्पन्न हुईं ॥ १० ॥

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥ ११॥

देवताओंने जिस यज्ञपुरुषका विधान (संकल्प) किया, उसको कितने प्रकारसे (किन अवयवोंके रूपमें) कल्पित किया, इसका मुख क्या था, बाहुएँ क्या थीं, जंघाएँ क्या थीं और पैर कौन थे—यह बताया जाता है ॥ ११ ॥

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ १२॥

ब्राह्मण इसका मुख था। (मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए।) क्षत्रिय दोनों भुजाएँ बना। (दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए।) इस पुरुषकी जो दोनों जङ्घाएँ थीं, वही वैश्य हुईं अर्थात् उनसे वैश्य उत्पन्न हुए, और पैरोंसे शूद्र-वर्ण प्रकट हुआ ॥ १२ ॥

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत॥ १३॥

इस यज्ञपुरुषके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए। नेत्रोंसे सूर्य प्रकट हुए। मुखसे इन्द्र और अग्नि तथा प्राणसे वायुकी उत्पत्ति हुई ॥ १३ ॥

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥ १४॥

यज्ञपुरुषकी नाभिसे अन्तरिक्षलोक उत्पन्न हुआ। मस्तकसे स्वर्ग प्रकट हुआ। पैरोंसे पृथिवी, कानोंसे दिशाएँ हुईं। इस प्रकार समस्त लोक उस पुरुषमें ही कल्पित हुए ॥ १४ ॥

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥ १५॥

देवताओंने जब यज्ञ करते समय (संकल्पसे) पुरुषरूप पशुका बन्धन किया, तब सात समुद्र इसकी परिधि (मेखलाएँ) थे। इक्कीस प्रकारके छन्दोंकी

---

* उपनिषद्के अनुसार श्रुतिने मोक्षका प्रतिपादन भी किया है। 'परोक्षवादो वेदोऽयम्'—श्रुतियोंमें अध्यात्मवाद परोक्षरूपसे निरूपित है। अतः मोक्षप्रतिपादनके लिये इस श्रुतिका अर्थ इस प्रकार होगा—

उस आत्म-शोधनरूप यज्ञमें देवताओं—दिव्यवृत्तियोंने पुरुषशरीराभिमानीको, जो शरीरमें अहङ्कार करके पशु हो गया था, कुशोंके—साधनोंके द्वारा प्रोक्षित—विशुद्ध किया। इस प्रकार प्रोक्षित होनेपर वह अग्रजन्मा ब्राह्मण—ब्रह्मज्ञानसम्पन्न हुआ। इसी प्रकार इन्द्रादि देवताओंने, साध्य देवताओंने और ऋषियोंने भी यजन किया। सबने इसी रीतिसे शरीराभिमानीका आत्मशोधन करके मोक्ष प्राप्त किया।

(गायत्री, अतिजगती और कृतिमेंसे प्रत्येकके सात-सात प्रकारसे) समिधा बनी॥ १५॥ [इस मन्त्रमें सृष्टि-यज्ञकी समिधाका वर्णन है।]

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसस्तु पारे।
सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो
नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते*॥ १६॥

तमस् (अविद्यारूप अन्धकार)-से परे आदित्यके समान प्रकाशस्वरूप उस महान् पुरुषको मैं जानता हूँ। सबकी बुद्धिमें रमण करनेवाला वह परमेश्वर सृष्टिके आरम्भमें समस्त रूपोंकी रचना करके उनके नाम रखता है; और उन्हीं नामोंसे व्यवहार करता हुआ सर्वत्र विराजमान होता है॥ १६॥ [इस मन्त्रमें और इसके आगेके मन्त्रमें भी श्रीहरिके वैभवका वर्णन है।]

ॐ धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार
शक्रः प्रविद्वान् प्रदिशश्चतस्रः।
तमेवं विद्वानमृत इह भवति
नान्यः पन्था विद्यते अयनाय†॥ १७॥

पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिनकी स्तुति की थी, इन्द्रने चारों दिशाओंमें जिसे (व्याप्त) जाना था, उस परम पुरुषको जो इस प्रकार (सर्वस्वरूप) जानता है, वह यहीं अमृतपद (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग निज-निवास (स्वस्वरूप या भगवद्धाम)-की प्राप्तिका नहीं है॥ १७॥

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-
स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः‡॥ १८॥

देवताओंने (पूर्वोक्त रूपसे) यज्ञके द्वारा यज्ञस्वरूप परमपुरुषका यजन (आराधन) किया। इस यज्ञसे सर्वप्रथम सब धर्म उत्पन्न हुए। उन धर्मोंके आचरणसे वे देवता महान् महिमावाले होकर उस स्वर्गलोकका सेवन करते हैं, जहाँ प्राचीन साध्य देवता निवास करते हैं॥ १८॥ [इस मन्त्रमें सृष्टियज्ञ एवं मोक्षके वर्णनका उपसंहार है।]

॥ पुरुषसूक्त सम्पूर्ण॥

विषय-त्याग

तरङ्गस्थं द्रवं सिन्धुर्न वाञ्छति यथा तथा। विषयानन्दवाञ्छा मे मा भूदानन्दरूपतः॥
दारिद्र्याशा यथा नास्ति सम्पन्नस्य तथा मम। ब्रह्मानन्दे निमग्नस्य विषयाशा न तद्भवेत्॥
विषं दृष्ट्वामृतं दृष्ट्वा विषं त्यजति बुद्धिमान्। आत्मानमपि दृष्ट्वाहमनात्मानं त्यजाम्यहम्॥

(आत्मप्रबोध० १५—१७)

जैसे समुद्र तरङ्गोंमें स्थित जलकी इच्छा नहीं करता, वैसे ही आनन्दस्वरूप हो जानेके कारण मुझको विषयोंके आनन्दकी इच्छा नहीं है। जैसे सम्पत्तिमान् पुरुषको दरिद्रताकी आशा नहीं होती, वैसे ही ब्रह्मानन्दमें निमग्न मुझको विषयोंकी आशा नहीं है। जैसे बुद्धिमान् पुरुष विष तथा अमृतको देखकर विषका त्याग करता है, वैसे ही परमात्माको देखकर मैं अनात्मा (विषयों)-का त्याग करता हूँ।

---

*-† ये दोनों मन्त्र ऋग्वेदकी प्रचलित प्रतियोंके पुरुषसूक्तमें नहीं मिलते, परंतु पुरुषसूक्तके पृथक् प्रकाशित कई संस्करणोंमें मिलते हैं। मूल उपनिषद्में भी इनका संकेत है। ये मन्त्र 'पारमात्मिकोपनिषद्', 'महावाक्योपनिषद्' तथा 'चित्युपनिषद्' में आये हैं। १७ वाँ मन्त्र 'तैत्तिरीय आरण्यक' में भी है।

‡ उपनिषद् इस मन्त्रमें मोक्ष-निरूपणका उपसंहार भी निरूपित—निर्दिष्ट करता है। अतः मोक्ष-निरूपणके लिये श्रुतिका अर्थ इस प्रकार होना चाहिये—

सम्पूर्ण कर्म, जो भगवदर्पणबुद्धिसे भगवान्के लिये किये जाते हैं, यज्ञ हैं। उस कर्मरूपयज्ञके द्वारा सात्त्विक वृत्तियोंने उन यज्ञस्वरूप भगवान्का यजन—पूजन किया। इसी भगवदर्पणबुद्धिसे किये गये यज्ञरूप कर्मोंके द्वारा ही सर्वप्रथम धर्म उत्पन्न हुए—धर्माचरणकी उत्पत्ति भगवदर्पणबुद्धिसे किये गये कर्मोंसे हुई। इस प्रकार भगवदर्पणबुद्धिसे अपने समस्त कर्मोंके द्वारा जो भगवान्का यजन-रूप कर्मका आचरण करते हैं, वे उस भगवान्के दिव्यधामको जाते हैं, जहाँ उनके साध्य—आराध्य आदिदेव भगवान् विराजमान हैं।